पारस परस

वर्ष-7 अंक-2 अप्रैल-जून, 2017, रजि. नं.: यू.पी.एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ-40 मूल्य- 25

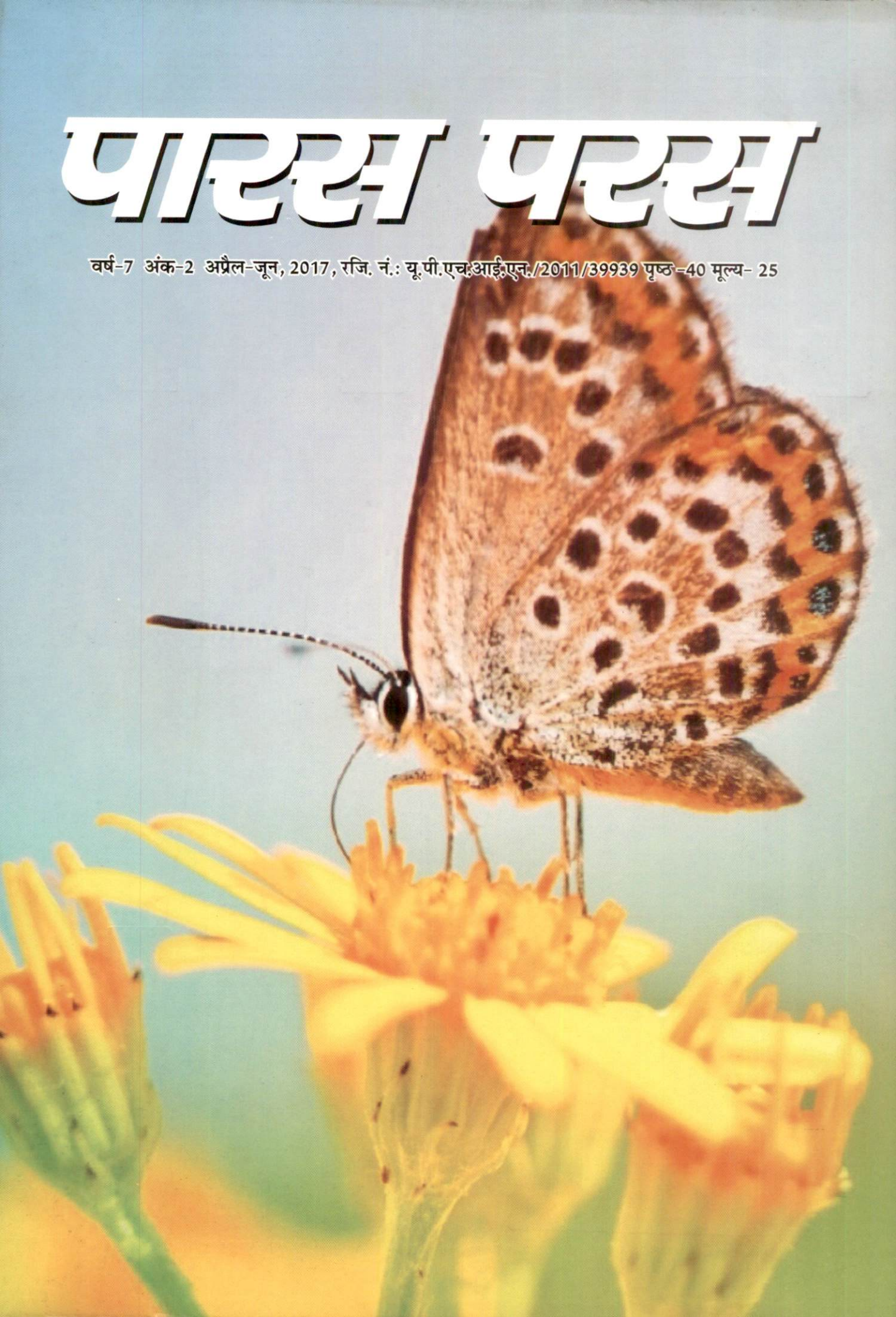

सृजन स्मरण

शान्ति प्रिय द्विवेदी

जन्म- 1906 निधन- 27 अगस्त 1967

मेरा छोटा सा जीवन रे,
चिर दुर्बल है चिर निर्मल,
है निशा–कालिमा इसमें तो
दिन का आभा उज्ज्वल।

वर्ष : 6 अंक : 2 अप्रैल-जून, 2017 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल
डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक
डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र.से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि,खण्ड,शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डा. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
बाबूजी, चलते चले गये	डा. अनिल कुमार	4
कालजयी		
ग्राम-युवति	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
जीवन संगीत	शान्तिप्रिय द्विवेदी	6
दो दुनिया के बीच	लक्ष्मीकान्त वर्मा	7
अमीरों का कोरस	गोरख पांडेय	8
दीप से दीप जले	माखनलाल चतुर्वेदी	9
बड़े संघर्ष के दिन	केदारनाथ अग्रवाल	10
समय के सारथी		
कौन हो तुम द्वार आए	बसंत राम दीक्षित 'बसन्त'	11
तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन	नन्दकुमार मनोचा 'वारिज'	12
झूठी हँसी होठों जिए	श्याम नारायण श्रीवास्तव 'श्याम'	13
राह पर अपनी न चलता आदमी	राजेन्द्र वर्मा	14
मन का श्रृंगार	शिव भजन 'कमलेश'	15
गान गा, कवि गान	बैजनाथ गुप्त 'बृजेन्द्र'	16
एक युग के बाद आज तुमने आज पूछा	केशरी नाथ त्रिपाठी	17
अगर तुम मीत बन जाते	आर्य भूषण गर्ग	18
कविता और इलाज	दिनेश चन्द्र अवस्थी	19
कलरव		
चाँद!	प्रभाकर माचवे	20
ताक धिना-धिन	दीनदयाल उपाध्याय	21
एक तिनका	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	22
साल दर साल	भवानी प्रसाद मिश्र	23
नारी स्वर		
हमारे देश की माटी	चन्द्रकान्ता 'चन्द्र'	24
तुम न आए	कंचन लता मिश्र 'कचन'	25
हे विहग! हो सजग	कृष्णा अवस्थी	26
आज के बदलते संदर्भ	गीता आकांक्षा	27
मैं बारिश की ठंड रुपहली	रचना शुक्ल	28
मन को क्या कह आऊँ	निर्मल साधना	29
लवकुश	प्रतिमा भारती	30
वह छवि	मंजुलता तिवारी 'सुशोभिता'	31
पंछी आँगन के हम	डा. विद्याविन्दु सिंह	32
परिवर्तन	श्रीमती शालिनी खान	33
गजल	डा. सरिता शर्मा	34
प्रेम	डा. अमिता दुबे	35
नवोदित रचनाकार		
गर्व से गरजता	जगदीश शुक्ल	36
शत्-शत् प्रणाम भारत माता	डा. मोहन तिवारी 'आनन्द'	37
लहजा	हीरालाल	38
अपसै केरि ढिठाई है	भारतेन्दु मिश्र	39
गजल	प्रीतम सिंह राही	40

प्रेम, सौहार्द व सौमनस्य समाज के लिए आवश्यक

माँ द्वारा बचपन में सुनाई गयी विभिन्न कहानियों में वर्तमान समय में प्रासंगिक आपसी प्रेम एवं सौहार्द से जुड़ी एक कहानी, जिस रूप में मुझे याद है, उसे आप सभी के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक बार की बात है, एक व्यापारी से धन–ऐश्वर्य प्रदात्री माँ लक्ष्मी किसी कारणवश रूठ गईं और उसके घर से जाने लगीं। जाते समय उन्होंने व्यवसायी से यह कहा कि अब मैं जा रही हूँ और मेरी जगह तुम्हारे यहाँ 'अलक्ष्मी' यानि 'हानि' का प्रवेश होगा। उन्होंने आगे कहा कि मैं तुम्हारे यहाँ बहुत दिनों तक रही इसलिए जाते–जाते तुमको वरदान भी देना चाहती हूँ। तुम जो कुछ माँगना चाहो, माँग लो।

हालाँकि उस व्यवसायी को अपनी कथित गलती के बारे में कोई जानकारी नहीं थी जिसके कारण माँ लक्ष्मी रूठ गई थीं, किन्तु वह अत्यन्त विनम्र व्यक्ति था इसलिये उसने कहा कि माँ जब आपने यहाँ से जाने का निश्चय कर ही लिया है और आपके जाने के बाद यदि 'हानि' का प्रवेश होना ही है तो इस बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है लेकिन यदि आप मुझे कोई वरदान देना ही चाहती हैं तो यह वरदान दें कि मेरे परिवार के सदस्यों में आपसी प्रेम बना रहे और उनके बीच कभी कटुता का प्रवेश न हो। माँ लक्ष्मी, व्यवसायी के द्वारा माँगे गये वर पर अपनी सहमति देते हुए वहाँ से चली गयीं।

उक्त व्यवसायी के तीन पुत्र थे, जो अपने पिता की तरह ही अत्यन्त विनम्र एवं संस्कारवान् थे। पुत्रों की तरह ही उसकी सभी बहुएँ भी सुसंस्कारित थीं। एक दिन व्यवसायी की छोटी बहू भोजन बना रही थी। उसने दाल में सभी आवश्यक सामग्री के साथ नमक आदि डालकर चूल्हे पर पकने के लिये छोड़ दिया और स्वयं आँगन में किसी अन्य काम में लग गयी। थोड़ी देर में उसे ऐसा आभास हुआ कि वह दाल में नमक डालना भूल गयी है। उसने आँगन से ही अपनी जेठानियों को आवाज दी कि अगर कोई मेरी आवाज सुन रहा हो तो दाल में नमक डाल दे। उसकी बात दोनों जेठानियों ने सुना, जो अलग–अलग जगह अपने कार्यों में व्यस्त थीं। उन्हें आपस में यह नहीं पता चला कि उनकी सबसे छोटी देवरानी की बात अन्य बहुओं ने भी सुन ली है। इसी गफ़लत में वे बारी–बारी से रसोई में गयीं और दाल में नमक डाल दिया।

व्यवसायी के सभी बच्चे उसके साथ काम पर जाते थे और बारी–बारी से घर में आकर भोजन कर जाते थे। सबसे पहले व्यवसायी और उसके बाद बड़े बेटे से यह क्रम शुरू होकर उसके छोटे बेटे पर समाप्त होता था। भोजन के समय व्यवसायी घर पर पहुँचा। बहू ने खाना परोसा। व्यवसायी ने जैसे ही पहला निवाला मुँह में लिया तो उसे दाल में बहुत अधिक नमक होने का स्वाद मिला। लेकिन व्यवसायी बहुत समझदार था, उसे आभास हुआ कि माँ लक्ष्मी के जाते ही लगता है 'हानि' का प्रवेश हो गया है। उसने सोचा कि अगर मैं दाल में अधिक नमक होने का ज़िक्र करूँगा तो घर में खटपट शुरू हो जायेगी इसलिये उसने चुपचाप भोजन किया और यह कहते हुए कि भोजन बहुत स्वादिष्ट था, अपने कार्यस्थल पर वापस चला गया। इसके पश्चात् बड़ा बेटा आया। उसे भी खाना परोसा गया। उसने भी जैसे ही पहला निवाला मुँह में डाला उसे भी नमक बहुत ज्यादा लगा लेकिन उसने कुछ न कहते हुए केवल यह पूछा कि "क्या पिताजी ने भोजन कर लिया है ?" बहुओं ने इसका उत्तर "हाँ" में दिया। उसके यह पूछने पर कि, "क्या पिताजी ने कुछ कहा ?" बहुओं ने कहा कि उन्होंने भोजन की तारीफ़ की। बेटे ने सोचा कि जब

पिताजी ने भोजन की प्रशंसा की है तो फिर इसके बारे में मेरा कुछ कहने का कोई औचित्य नहीं है, और वह भी प्रशंसा करते हुए चला गया। इसके पश्चात् क्रमवार उसके अन्य भाइयों का भी आना हुआ और सभी ने उसी तरह का व्यवहार किया। रात में जब पुत्रों के साथ व्यवसायी का आगमन हुआ, तो उनके समक्ष 'अलक्ष्मी' यानि 'हानि' हाथ जोड़कर खड़ी हुई और उनसे कहा कि भोजन के समय ऐसी घटना होने के बाद भी जब परिवार के सदस्यों के मध्य कोई भी विवाद नहीं हुआ तो ऐसे स्थान पर मेरा सफल होना असंभव है इसलिए मैं यहाँ से जा रही हूँ। और..... वह व्यवसायी के घर से विदा हो गई।

माँ ने अन्त में, इस कहानी का निष्कर्ष यह दिया कि जहाँ प्रेम, सौहार्द व सौमनस्य है वहीं सुख–समृद्धि और प्रगति है। जहाँ इसका अभाव है वहाँ हानि है, कटुता है, पराभव है। प्रेम के अभाव में ही छोटी–छोटी बातें हमारे मध्य कटुता एवं वैमनस्य पैदा करती हैं और धीरे–धीरे यह व्यक्ति विशेष से लेकर परिवार, समाज–राष्ट्र यहाँ तक कि सम्पूर्ण मानवता के लिये संकट बन जाती हैं।

वर्तमान परिवेश में प्रेम, सौहार्द व सौमनस्य का भाव निरन्तर समाप्त होता जा रहा है, चाहे वह परिवार के स्तर पर हो, समाज के स्तर पर हो, राज्य या राष्ट्र के स्तर पर या फिर मानवतावादी दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति के स्तर पर हो। इसलिये ऐसे कठिन समय में यह अपरिहार्य एवं प्रासंगिक हो गया है कि हम प्रेम व सौहार्द को पुनर्जीवित करने का कार्य परिवार की इकाई से प्रारम्भ करते हुए, सम्पूर्ण सामाजिक संस्थाओं, यथा–समाज, राज्य, राष्ट्र के साथ ही सृष्टिव्यापी बनायें तभी मानव जाति में भाईचारा व एकता का विकास हो सकेगा और उसके समग्र कल्याण का उद्देश्य भी फलीभूत होगा।

पत्रिका के विभिन्न स्तम्भों/शीर्षकों के अन्तर्गत सुधी पाठकों हेतु स्वनामधन्य कवियों की रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही हैं। पत्रिका के प्रकाशन का एक मात्र उद्देश्य हिन्दी साहित्य की सेवा करना है, किसी प्रकार से धनार्जन आदि का नहीं है। पत्रिका में जहाँ हम 'सृजन–स्मरण' के अन्तर्गत विभिन्न दिवंगत रचनाकारों का पुण्य स्मरण कर उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं वहीं इसका एक महत्वपूर्ण ध्येय ऐसे रचनाकारों की जन्म व अवसान की तिथियों के साथ उनके छायाचित्रों को साहित्य प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करना भी है, जिससे हिन्दी साहित्यप्रेमी व आगामी पीढ़ी ऐसे व्यक्तित्वों से अपनापन जोड़ सकें। इसी तरह 'कालजयी' स्तम्भ/शीर्षक के अन्तर्गत ऐसी ही महाविभूतियों की कतिपय उत्कृष्ट रचनाओं को विद्वज्जनों के लिये प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके साथ ही अन्य स्तम्भों/शीर्षकों के अन्तर्गत वर्तमान रचनाकारों की कतिपय रचनाओं को भी पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए हम उन सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता व आभार व्यक्त करते हैं जिनके प्रकाशन संस्थान आदि से सामग्री ग्रहण की जा रही है। यद्यपि हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन में हम सहयात्री हैं फिर भी बिना किसी पूर्वाग्रह के हम स्वयं को ऐसे सभी महानुभावों, प्रकाशकों, संस्थानों का ऋणी मानते हैं। हम समस्त स्थापित एवं उदीयमान रचनाकारों को भी विभिन्न स्तम्भों/शीर्षकों के अन्तर्गत मौलिक रचनाएँ उपलब्ध कराने हेतु सादर आमंत्रित कर रहे हैं।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

बाबूजी चलते चले गये

- डा. अनिल कुमार पाठक

कितने घुमाव कितने चक्कर।
उँचे–नीचे तूफान भरे,
जल प्लावित, बर्फीले पथ पर।
दुखदायी इन राहों में भी,
बाबू जी, चलते चले गये।।

राह में छोड़ गया मितवा,
पर नहीं गिला अथवा शिकवा
हर पल मृदु मुस्कान बिखेरे,
कोमल, निर्मल उनका हियवा।
व्यक्तित्व समत्व योगी जैसे,
एकाग्र चित्त हो बढ़े गये।
बाबू जी, चलते चले गये।

उत्साह, उमंग भरी आशा,
मंजिल पाने की अभिलाषा।
तममय रातें भले रहीं,
पर दूर–दूर तक नहीं निराशा।
बिन विरत हुए नैतिकता से,
सत्पथ पर बढ़ते चले गये।
बाबू जी, चलते चले गये।।

परहित में सब त्याग दिया,
बेसुर को सुमधुर राग दिया।
ममता–समता, बिन भेद–भाव,
मरुथल को नव बाग दिया।
मानवता के सम्बल बन,
सबके हित रत चले गये।
बाबू जी, चलते चले गये।।

❖❖❖

ग्राम-युवति

- पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

वह आती,
अपने बिखरे केशों से
यौवन–राशि लुटाती,
पथ पर मुसकाती, वह आती।

कर खेल समीरन मन्द हास,
बिखराता उसके केश–पास।
मुख पर घूँघट–देता डाल,
लज्जा से हो उठती लाल।
फटे आंचल को खिसकाती। वह आती।।

टेढ़े पथ पर टेढ़ी चाल,
लज्जित होता है देख व्याल,
मुख चूम लिया करता सौरभ,
सिहर उठती वह तत्काल,
तनिक लज्जा से मुड़ जाती है। वह आती।।

उस ओर क्षितिज के आगे,
कुछ महल बने वैभवशाली।
रहतीं उसमें कितनी ही बालायें,
पहने नीली, पीली साड़ी।
पर दोनों में अन्तर कितना,
नहीं चन्द्र–तारक में जितना।
यह जीवन को सुस्मित करतीं,
वे निज वैभव पर इठलातीं। वह आती।।

❖❖❖

जीवन संगीत

शान्तिप्रिय द्विवेदी

यह लघु–लघु रजकण का मृत्यु तन,
रजकण–सा ही है दुर्बल, पर–
रजकण की ढेरी में ही है–
स्वर्ण ज्योति भी निर्मल।

मेरा छोटा सा जीवन रे,
चिर दुर्बल है चिर निर्मल,
है निशा–कालिमा इसमें तो
दिन कह आभा उज्ज्वल।

सागर के अन्तस्तल में भी,
मोती की छवि है निर्मल।
सागर के अन्तस्तल में ही,
पंकिलता भी है, दुर्बल।

दुर्बलता का निर्मलता से,
जीवन में है, सम्मिलन।
दोनों के सम्मेलन से ही
मानव–जीवन मनमोहन।

❖❖❖

दो दुनिया के बीच

लक्ष्मीकान्त वर्मा

दो दुनिया के बीच–
मेरे सामने एक दुनिया है।
भूखी, प्यासी, नंगी,अध–नंगी।
मेरे पास एक और दुनिया है,
मेरे ही अन्तस् में बिल्कुल वैसे ही–
भूखी, प्यासी, नंगी, अध–नंगी।
मैं जितना ही बाहर की ओर देखता हूँ–
उतना ही गहराता जाता हूँ अन्तर में।

तुम कहते हो
जो कुछ है, मिथ्या है,
मैं कैसे मानूँ।
मैं जब आँखें बन्द करता हूँ,
मुझे मिलता है महज अंधकार,
काली नंगी छायाएँ,
अगणित, अनेक व्याकुलताएँ।

अपना ही धीवर मन–
तमस्र सागर में ढूँढ़ता है मछलियाँ,
एक–एक लहर पर असंख्य–असंख्य पंक्तियाँ,
लगता है इस अंधेरी गुफा में भी–
पंक्ति–बद्ध आ रहे–वही–
भूखे, प्यासे, नंगे, अध–नंगी
कहाँ हूँ मै...?
कहाँ हूँ मै...?
कहाँ हूँ मै...?
कहाँ हूँ मै...?

❖❖❖

मैं हूँ
मेरी आवाज है
अजायबघर, क्यूरियोमार्ट
दिखावे का नया आर्ट
अर्जुन की काट–छाँट
दुर्योधन की नयी बाट

हर खाने जुए के बिके हुए
हर कौड़ी फँसी हुई
जंग लगी सूई की नोंक कटी हुई
पृथ्वी की छाती की पर्त–पर्त बँटी हुई
अंधी गलियों में युधिष्ठिर की आत्मा
भीम की नपुंसकता बन अटी हुई।

ओ अर्जुन!
गाण्डीव को गिरवी रखने के बाद
तुम किस पर हो टिके हुए
क्या तुम भी हो बिके हुए–बिके हुए।

अमीरों का कोरस

गोरख पांडेय

जो हैं गरीब उनकी जरूरतें कम हैं,
कम हैं जरूरतें तो मुसीबतें कम हैं,
हम मिल–जुल के गाते गरीबों की महिमा,
हम महज अमीरों के तो गम ही गम हैं।

वे नंगे रहते हैं बड़े मजे में,
वे भूखों रह लेते हैं, बड़े मजे में,
हमको कपड़ों पर और चाहिए कपड़े,
खाते–खाते अपनी नाकों में दम है।

वे कभी कभी कानून भंग करते हैं,
पर भले लोग हैं, ईश्वर से डरते हैं,
जिसमें श्रद्धा या निष्ठा नहीं बची है,
वह पशुओं से भी नीचा और अधम है।

अपनी श्रद्धा भी धर्म चलाने में है,
अपनी निष्ठा तो लाभ कमाने में है,
ईश्वर है तो शांति व्यवस्था भी है,
ईश्वर से कम कुछ भी विध्वंस परम है।

करते हैं त्याग गरीब स्वर्ग जाएँगे,
मिट्टी के तन से मुक्ति वहीं पाएँगे,
हम जो अमीर हैं, सुविधा के बंदी हैं,
लालच से अपने बंधे हरेक कदम हैं।

इतने दुख में हम जीते जैसे–तैसे,
हम नहीं चाहते गरीब हों हम जैसे,
लालच न करें, हिंसा पर कभी न उतरें,
हिंसा करनी हो तो दंगे क्या कम हैं।

जो गरीब हैं उनकी जरूरतें कम हैं,
कम हैं मुसीबतें, अमन चैन हरदम है,
हम मिल–जुल के गाते गरीबों की महिमा,
हम महज अमीरों के तो गम ही गम हैं।

❖❖❖

दीप से दीप जले

माखनलाल चतुर्वेदी

सुलग–सुलग री जोत दीप से दीप मिलें,
कर–कंकण बज उठे, भूमि पर प्राण फलें।

लक्ष्मी खेतों फली अटल वीराने में,
लक्ष्मी बँट–बँट बढ़ती आने–जाने में,
लक्ष्मी का आगमन अँधेरी रातों में,
लक्ष्मी श्रम के साथ घात–प्रतिघातों में,
लक्ष्मी सर्जन हुआ
कमल के फूलों में,
लक्ष्मी–पूजन सजे नवीन दुकूलों में।।

गिरि, वन, नद–सागर, भू–नर्तन तेरा नित्य विहार,
सतत मानवी की अँगुलियों तेरा हो श्रृंगार,
मानव की गति, मानव की धृति, मानव की कृति ढाल,
सदा स्वेद–कण के मोती से चमके मेरा भाल,
शकट चले जलयान चले,
गतिमान गगन के गान।
तू मेहनत से झर–झर पड़ती, गढ़ती नित्य विहान।।

ऊषा महावर तुझे लगाती, संध्या शोभा वारे,
रानी रजनी पल–पल दीपक से आरती उतारे,
सिर बोकर, सिर ऊँचा कर–कर, सिर हथेलियों लेकर,
गान और बलिदान किए मानव–अर्चना सँजोकर,
भवन–भवन तेरा मंदिर है,
स्वर है श्रम की वाणी।
राज रही है कालरात्रि को उज्ज्वल कर कल्याणी।।

वह नवांत आ गए खेत से सूख गया है पानी,
खेतों की बरसन कि गगन की बरसन किए पुरानी,
सजा रहे हैं फुलझड़ियों से जादू करके खेल,
आज हुआ श्रम–सीकर के घर हमसे उनसे मेल।
तू ही जगत की जय है,
तू है बुद्धिमयी वरदात्री।
तू धात्री, तू भू–नव गात्री, सूझ–बूझ निर्मात्री।।

युग के दीप नए मानव, मानवी ढलें,
सुलग–सुलग री जोत! दीप से दीप जलें।

❖❖❖

बड़े संघर्ष के दिन

- केदार नाथ अग्रवाल

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।
हमेशा काम करते हैं,
मगर कम दाम मिलते हैं।
प्रतिक्षण हम बुरे शासन–
बुरे शोषण से पिसते हैं।
अपढ़, अज्ञान, अधिकारों से–
वंचित हम कलपते हैं।
सड़क पर खूब चलते
पैर के जूते–से घिसते हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी ग्लानि के दिन हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।।
न दाना एक मिलता है,
खलाये पेट फिरते हैं।
मुनाफाखोर की गोदाम–
के ताले न खुलते हैं।
विकल, बेहाल, भूखे हम,
तड़पते और तरसते हैं।
हमारे पेट का दाना
हमें इनकार करते हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी भूख के दिन हैं।।
हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।

नहीं मिलता कहीं कपड़ा,
लँगोटी हम पहनते हैं।
हमारी औरतों के तन–
उघारे ही झलकते हैं।
हजारों आदमी के शव
कफन तक को तरसते हैं।
बिना ओढ़े हुए चदरा,
खुले मरघट को चलते हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी लाज के दिन हैं।।
हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।।

हमारे देश में अब भी,
विदेशी घात करते हैं।
बड़े राजे, महाराजे,
हमें मोहताज करते हैं।
हमें इंसान के बदले,
अधम सूकर समझते हैं।
गले में डालकर रस्सी
कुटिल कानून कसते हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी कैद के दिन हैं।।
हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।।

इरादा कर चुके हैं, हम,
प्रतिज्ञा आज करते हैं।
हिमालय और सागर में,
नया तूफान रचते हैं।
गुलामी को मसल देंगे
न हत्यारों से डरते हैं।
हमें आजाद जीना है,
इसी से आज मरते हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारे होश के दिन हैं।
हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।।

❖❖❖

कौन हो तुम द्वार आए

- बसंत राम दीक्षित 'बसन्त'

कौन हो तुम द्वार आए।
मैं रहा जिससे अपरिचित,ध्वनि न पड़ती थी, सुनाई,
किन्तु सहसा तुमने आकर, ज्योति अन्तर्मन जगाई।
हो गया आलोक तत्क्षण छँट गया छाया अँधेरा,
दे गया आनन्द मुझको, कर प्रफुल्लित हृदय मेरा।
तुम्हीं तो विश्वास लाए।।
कौन हो तुम द्वार आए।।
आज जिस साहस अपरिमित का हुआ संचार, मुझमे,
वह तुम्हारा ही दिया है, यह अटल विश्वास मन में।
निशा बीती प्रभा फैली, हुआ हो जैसे सवेरा,
दूर तक पथ दिख रहा है नहीं किंचित भी अँधेरा।
तुम्हीं तो उत्साह लाए।।
कौन हो तुम द्वार आए।।
आत्मा ही मानवों में सद्गुणों का भाव लाती,
गलत कृत्यों को न करने के लिए ही छटपटाती।
वह तुम्हारा अंश ही है, दिव्यता जन–जन जगाती,
जीव में जीवात्मा के, नाम से जानी जो जाती।
तुम्हीं तो उर में समाए।।
कौन हो तुम द्वार आए।।

❖❖❖

तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन के शरों से

- नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'

तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन के शरों से,
कठिन होगा तब मुझे फिर रोक पाना।

ये गुलाबी गाल सोनिल धूप से खिलते सजीले,
ओस भीगी पाँखुरी से अधर दोनों हैं लचीले।
तुम न मधुमय औ सुरीले गान छेड़ो,
कठिन होगा तब उन्हें फिर भूल जाना।

तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन के शरों से
कठिन होगा तब मुझे फिर रोक पाना।

रेशमी इन केश–जालों की सुखद छाया सलोनी,
मत्त कर देती मुझे है साँस की मधुगंध दोनी।
अब इशारों से न तुम घायल करो,
कठिन होगा छटपटाना, मुक्ति पाना।

तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन के शरों से,
कठिन होगा तब मुझे फिर रोक पाना।

काश! मैं तेरी नवलता क्षण प्रतिक्षण बाँध लेता,
तुम स्वयं में प्रतिमा, मैं अधूरी साध लेता।
तुम न भावों के जलधि को यों उठाओ,
कठिन होगा डूबना, फिर तैर पाना।

तुम न बींधो तीक्ष्ण चितवन के शरों से,
कठिन होगा तब मुझे फिर रोक पाना।।

❖❖❖

झूठी हँसी होंठों लिये

- श्याम नारायण श्रीवास्तव 'श्याम'

पूछी कुशलता शुक्रिया, हम हँस दिये, हम चल दिये,
ज्वालामुखी मन में भरे, झूठी हँसी होंठों लिये।

देखा किये दम तोड़ते, मंगलकरण स्वर मंत्र के,
होते हुये घेरे सघन, निर्मम निरन्तर तंत्र के।
चारों तरफ, जमघट जुटे, आकुल सभी मधुपान को,
कोई न जो, सच के लिये, प्याला हलाहल का पिये।

देती घटा आवाज है, बहरा हुआ हमराज है,
करवट दिये लेटे हुये, मधुयामिनी का साज है।
आँधी चली, पत्थर गिरे, प्रतिध्वनि नहीं कोई कहीं,
पानी चुके, जाले पूरे, किस काम के अन्धे कुयें।

सींचा जिगर के खून से हर एक पल हमने जिन्हें,
काबिल न तुम इस दौर के, हमने सुना कहते उन्हें।
हाथों ठगे हम वक्त के, सिर थाम कर सोचा किये,
क्या है यही वह जिन्दगी, रोये हँसे जिसके लिए।

जाना कहाँ, जाना नहीं, बीती उमर सब राह में,
नीले कुसुम की चाह में, कुछ भग्न–उर की आह में।
मंजिल न यद्यपि दूर थी, दुर्भाग्य लेकिन साथ था,
लेकर मशालें जो चले, निकले वही बहुरूपिये।

❖❖❖

राह पर अपनी न चलता आदमी

-राजेन्द्र वर्मा

राह पर अपनी न चलता आदमी,
देवता का स्वाँग भरता आदमी।

अपने ही हाथों है बनता आदमी,
अपने ही हाथों बिगड़ता आदमी।

पद–प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए,
स्वागती कालीन बनता आदमी।

फोटुओं में मुक्ति का नायक बना,
पंछियों के पर कतरता आदमी।

एक भी विषदन्त है उसके नहीं,
तक्षकों को मात करता आदमी।

क्षिति, गगन, जल, वायु, पावक से बना,
किंतु उनसे होड़ बदता आदमी।

अपनों ही से त्रस्त हुए।

अपनों ही से त्रस्त हुए,
घर–चौबारे ध्वस्त हुए।

बेशक आजादी पायी,
किन्तु हौसले पस्त हुए।

रंगमहल को चमकाने,
लाखों सूरज व्यस्त हुए।

सूर्य अनेक उगे, लेकिन,
समय–पूर्व ही अस्त हुए।

प्राची को प्रणाम करके,
पश्चिम के अभ्यस्त हुए।

मानवधर्म नहीं पनपा,
धर्म अनेक प्रशस्त हुए।

❖❖❖

मन का शृंगार

-शिवभजन 'कमलेश'

तन का तो शृंगार नित्य ही करते हम,
लेकिन, मन का भी शृंगार जरूरी है।

ले कर झूठी शान, दिखाते हैं शेखी,
मन पर चढ़ी मलिनता हमने कब देखी।
हम तो केवल वक्ष तान कर चलते हैं,
अस्थिर भौतिकता के लिए मचलते हैं।

वैभव होने का केवल दम भरते हम,
पर, विद्या–धन का भण्डार जरूरी है।

हमने सोचा नहीं, हमें कैसे जीना,
सत्य–शिवम् के लिए पड़ेगा विष पीना।
हम केवल अपने तन पर इतराते हैं,
मन को वश में करने से कतराते हैं।

अपने हित के लिए सदा ही मरते हम,
पर, औरों का भी उपकार जरूरी है।

तन तो जगमग करता है उजियारे में,
मन बेचारा भटक रहा अँधियारे में।
इसके भीतर ज्ञान–दीप रखना होगा,
इसको भी महिमा–मण्डित करना होगा।

रुचि ले कर, तन के विकार तो हरते हम,
लेकिन, मन का भी उपचार जरूरी है।

तन–मन दोनों सबल बनें तो क्या कहना,
है, आवश्यक दोनों को मिलकर रहना।
केवल तन की चिन्ता हमें सताती है,
दृष्टि न मन की ओर हमारी जाती है।

तन–किश्ती, जीवन–जल में ले तिरते हम,
लेकिन, मन की भी पतवार जरूरी है।

❖❖❖

गान गा, कवि गान

- बैजनाथ गुप्त 'बृजेन्द्र'

इस उजेली रात में कुछ गान गा, कवि गान।
मौन क्यों, उठ, ले उठा
संगीत के स्वर सात,
स्वाति से धोकर प्रकृति को
और कर अवदात।
तान से तेरी धरा में जाग जायें प्राण।
इस उजेली रात में कुछ गान गा कवि गान।।
नाचने लग जाय तारापति
सितारों साथ,
हँस उठे रजनी, नटित
अवलोक कर निज नाथ।
बज उठे किरणें विपंची सी मधुर अम्लान।
इस उजेली रात में कुछ गान गा, कवि गान।।
गल उठें पाषाण, सरिता
रुक करे कल्लोल,
बस उठी रह जाँय
ज्यों की त्यों लहरियाँ लोल।
भूमि से नभ तक विनिर्मित हों रजत सोपान।
इस उजेली रात में कुछ गान गा, कवि गान।।
तरु फलें, फूलें लतायें
समय–असमय भूल,
सब तरह के फल सफल हों
सब तरह के फूल।
मरु बने स्वर्गीय सुमनों से भरा उद्यान।
इस उजेली रात में कुछ गान गा, कवि गान।।

❖❖❖

एक युग के बाद

- केशरी नाथ त्रिपाठी

एक युग के बाद तुमने आज पूछा,
मैं तुम्हारा कौन हूँ?
मैं तुम्हें दोहरा लगा,तुमने कहा,
इसलिए मैं मौन हूँ।

पालने दुविधा के जब तुम झूलती,
संशय तुम्हारे मन उठा, मैं कौन हूँ।
मैं वही जो आज हूँ,कल भी वही,
क्या कहूँ, कैसे कहूँ, मैं मौन हूँ।

पीर कहती घाव है गहरा बना,
दोषाग्नि में है कौन–सा चेहरा बना।
सान्त्वना देते रहे हर विकल पल,
जब खो गया तुझमें, भला मैं कौन हूँ।

झील की गहराइयों को नापना क्या?
मील–पट से दूरियों को जानना क्या?
उत्तर न मुझसे अब कभी भी माँगना,
रिस रहा मन, इसलिए मैं मौन हूँ।

दर्द कहना चाहता है

दर्द कहना चाहता है, टोकना क्या?
घाव बहना चाहता है, पोंछना क्या?

हर ऋतु स्वयं के आगमन का,
इन नया आभास देती।
मोड़ती चिन्तन दिशा को ,
फिर नया आकाश देती ।

टूटते रिश्ते सदा आवाज देते ,
शीत मौसम भी पिघलना चाहता है। रोकना क्या?

मौसमी सम्बन्ध की नजदीकियाँ औ' दूरियाँ,
पुष्प भी है रंग बदलते
औ' बदलती क्यारियाँ।
जलधि की गहराइयों मे कौन डूबे?
जग सतह पर ही भटकना चाहता है। सोचना क्या?

❖❖❖

अगर तुम मीत बन जाते

- आर्य भूषण गर्ग

सघन अनुभूतियों के पल अधर के गीत बन जाते
अगर तुम मीत बन जाते।

हृदय की धड़कनें शायद धड़कना भूल ही जातीं,
बिफरती भावनाएँ यूँ सँवरना भूल ही जातीं।
सिमटी आता इन्हीं दृग–कोरकों में रूप का सागर,
बिठा इनमें तुम्हें पलकें झपकना भूल ही जातीं।

मिटा अवरोध सारे हम तुम्हें अपना बना लेते।
भले संसार के सारे नियम विपरीत बन जाते।।

अजन्ता भित्तिचित्रों से सुनहले स्वप्न सब रहते ,
बिठाकर सामने तुमको हृदय की बात हम कहते।
तुम्हारी कोंपली छुअनें, हमें मदहोश कर जातीं,
तुम्हरे मदभरे स्वर की मधुर रसधार में बहते।

प्रतीक्षा–रात, लजीली, पायलीं, पदचाप की रुनझुन।
खनकते कंगनों के स्वर, मधुर संगीत बन जाते।।

तुम्हारी चिर प्रतीक्षा को तनिक विश्राम मिल जाता,
जनम जन्मान्तरों की प्रीति को इक नाम मिल जाता ।
भ्रमित विश्वास को मिलता तुम्हारे स्नेह का सम्बल,
हृदय की कामनाओं को, नया आयाम मिल जाता।

मिलन परिणाम होता तो सुगम जीवन डगर होती।
हृदय की हार के सन्दर्भ, मन की जीत बन जाते।।
अगर तुम मीत बन जाते।

❖❖❖

कविता और इलाज

- दिनेश चन्द्र अवस्थी

कविता और इलाज की, पद्धतियाँ हैं तीन।
ऐलोपैथिक काव्य की, बजे मंच पर बीन।।
बजे मंच पर बीन, कविन में आयुर्वेदिक।
पुस्तक में ही ठीक, मगर हो होम्योपैथिक।।
रहे सूत्र का ध्यान, बात अनुभव की कहता।
श्रोता भाव विभोर, सुनाओ जमकर कविता।।

चुनाव

डाकू जी अध्यक्ष का, जीते जेल–चुनाव।
पत्रकार आकर कहें, काकू हाल सुनाव।।
काकू हाल सुनाव, बने कैसे मर्यादित?
भीषण रहे डकैत, हुए कैसे निर्वाचित।।
बोला, वोटर जैसा वैसा ही नेता काकू।
चोर देंय जब वोट, चुना जायेगा डाकू।।

मूँहें

मूँछें सबकी शान हैं, रखिए इनकी लाज।
मूँदें की किस्में बहुत, अलग–अलग अंदाज।।
अलग–अलग अंदाज, कुछ बर्छी, तलवार सी।
कुछ ऐंठी, कुछ उठीं, कुछ लम्बी पतवार सी।।
ईश्वर को प्रिय लगें, न मानें सबसे पूछें।
झड़ते सिर के बाल, पर झड़े कभी न मूँहें।।

❖❖❖

चाँद!

-प्रभाकर माचवे

चंदा मामा, अब हम तेरा घर भी जान गए।
अब वो गप्पें नहीं चलेगीं।
बुढिया–चरखा,
हिरन –रेंडियर,
या स्याही का धब्बा।
अब तेरी क्या दाल गलेगी।
गोल हो गया डब्बा।
चंदा मामा, अब हम तेरा तेवर पहचान गए।
नहीं रहे तुम अब मामाजी,
दूर देश के गोल–गोल लामा जी।
नहीं रहे अब नन्हें–मुन्नें,
जाओ पहन लो भी कुर्ता – पाजामा जी।
चंदा मामा! अब हम तेरा जादू सारा जान गए।
चूहा सब जान गया है
बिल्ली आँखें मींचे बैठी,
होंठ जरा से भींचे बैठी,
दुबली –सी वह पीछे बैठी,
साँस मजे से खींचे बैठी,
पर चूहा सब जान गया है,
दुश्मन को पहचान गया है।
चाल नई है मान गया है,
कुत्ते से वह जाकर बोला,
फाटक पर सोया है, भोला,
दरवाजा थोडा–सा खोला।
अब बिल्ली पर कुत्ता झपटे,
या कुत्ते से बिल्ली निपटे,
बिल्ली गुपचुप नीचे बैठी,
चूहे ने निज मूँछें ऐंठी।

❖❖❖

ताक धिना-धिन

- दीनदयाल उपाध्याय

ताक धिना –धिन, ता–ता धिन–धिन।
किरनें लाँई सोने से दिन।
चिड़िया चहकी
फर–फर फड़की,
हवा बह उठी,
हल्की–हल्की।
सरसर सरकी छन–छन, छिन–छिन।
किरनें लाईं सोने से दिन।
धरती जागी,
कलियाँ जागीं।
सोई सभी
तितलियाँ जागीं।
फूल खिले बगिया में अनगिन,
किरनें लाईं सोने से दिन।
जगी किताबें,
जगे मदरसे,
बडी दूर जाना है।
घर से।
उठ ले, उठकर तू गिनती गिन।
किरनें लाईं सोने से दिन।।

❖❖❖

एक तिनका

– अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ,
एक दिन जब था मुंडेरे पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ,
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा।
मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन–सा,
लाल होकर आँख भी दुखने लगी।
मूठ देने लोग कपड़े की लगे,
ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी।
जब किसी ढब से निकल तिनका गया,
तब समझ ने यों मुझे ताने दिए।
ऐंठता तू किसलिए इतना रहा,
एक तिनका है बहुत, तेरे लिए।

एक बूँद

ज्यों निकलकर बादलों की गोद से–
थी, अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी,
सोंचने फिर–फिर यही जी में लगी,
हाय, क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में,
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में।
बह गई उस काल एक ऐसी हवा,
वो समन्दर ओर आई अनमनी।
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला,
वो उसी में जा गिरी, मोती बनी।
लोग यों ही हैं झिझकते, सोंचते,
जबकि उनको छोड़ना पड़ता है घर।
किंतु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें,
बूँद लौं कुछ और ही देता है, कर।

❖❖❖

साल दर साल

- भवानी प्रसाद मिश्र

साल शुरू हो दूध दही से,
साल खत्म हो शक्कर घी से।
पिपरमेन्ट, बिस्किट मिसरी से,
रहें लबालब दोनों खीसे।

मस्त रहें, सड़कों पर खेलें,
नाचें–कूदें गाएँ–ठेलें।
ऊधम करें, मचाएँ हल्ला,
रहे सुखी भीतर से, जी से।

साँझ, रात, दोपहर, सवेरा,
सबमें हो मस्ती का डेरा।
कातें, सूत बनाएँ कपड़ें,
दुनियाँ में क्यों डरें किसी से।

पंछी गीत सुनाए हमको,
बादल, बिजली भाए हमको।
करें दोस्ती पेड़ फूल से,
लहर–लहर से, नदी–नदी से।

आगे–पीछे, ऊपर–नीचे,
रहें हँसी की रेखा खींचे।
पास–पड़ोस, गाँव, घर, बस्ती,
प्यार ढेर भर करें, सभी से।

❖❖❖

हमारे देश की माटी

- चन्द्रकान्ता 'चन्द्र'

इस देश की माटी का–कण–कण खरा कंचन है
माथे इसे चढ़ा लो ये भाल का चन्दन है।।
भारत की भूमि पर, ये साकेत हमारा है,
समवेत भारतियों का, एक ही नारा है।
कश्मीर नहीं देंगे कहती ये प्रभंजन है।
माथे इसे चढ़ा लो वे भाल का चंदन है।।
देखेगा इस तरफ जो हम आँख फोड़ देंगे–
अब तक बहुत सहा है पर अब नहीं सहेंगे,
बलिदान हुए इस पर शत–शत् उन्हें वंदन हैं।
माथे इसे चढ़ा लो,ये भाल का चन्दन है।।
अब भी नहीं कमी हैं भाख में सपूतों की
ये ध्येय ही हमारा रघुवीर का स्यंदन है।
माथे इसे चढ़ा लो ये भाल का चंदन है।।
इस देश की सखियें समझों हमारा बन है।
सन–सन पवन विजन बन–मुरली हमारा मन है,
ये सूर्य चन्द्र–तारे सारे मेरे कंगन है–
माथे इसे चढ़ा लो ये भाल का चंदन है।।
धरती का भार हरने हम राम बन के आये–
उस कंस का वध करने हम श्याम बनके आये,
अब भी हमारे मन में उनका ही स्पन्दन है।
माथे इसे चढ़ा लो, ये भाल का चंदन है।।

❖❖❖

तुम न आए

- कंचन लता मिश्र 'कंचन'

मैं आने की बाट जोहती रही, न तुम आए।
बीती रैन, चैन नहिं आए, नैन अश्रु छाए।।

मेरी लगन लगी है तुमसे, तुम बेखबर रहे।
रात–रात जग, करवट बदली, ढलते पहर रहे।।

अब मेरा मन अपनी ही छाया से भय खाए।
मैं आने की बाट जोहती रही, न तुम आए।

सुख के बीत गये दिन, आई दर्द–भरी रातें,
मधु ऋतु भाए नहीं, न भाएँ भीगी बरसातें।

जाने कितने दर्द, अजाने बादल ले आये।
मैं आने की बाट जोहती रही, न तुम आये।

जब पंछी ने कहा, पी कहाँ, आशा अकुलाई।
पीर पिकी की सुन, कुहू कू गूँजी, अमराई।

चूनर भीग गई पर आँसू सूख नहीं पाए।
मैं आने की बाट जोहती रही, न तुम आए।
बीती रैन, चैन नहिं आए, नैन अश्रु छाए।

❖❖❖

हे विहग ! हो सजग

- कृष्णा अवस्थी

हे विहग ! हो सजग लक्ष्य पहचान लो,
व्याध के जाल में फँस न जाना कहीं।
वृक्ष के पात टूटे हुए हैं तो क्या,
अंक में दे रहा वह बसेरा तुम्हें।
स्नेह की छाँव तो सहचरी बन चुकी,
मिल रहा प्रात स्वर्णिम सबेरा तुम्हें।
नीड़ प्यारा तुम्हारा सुरक्षा कवच,
शाख को छोड़ कर दूर जाना नहीं।
स्वर्ण के कुछ कलश हैं सुरा से भरे,
दिग्भ्रमित कर रहे हैं जो हर एक को।
साधु के वेश में दस्यु भी घूमते,
कर रहे जो कलंकित, किसी नेक को।
राह काँटों–भरी देख कर तुम चलो,
बिन बिचारे कदम तुम उठाना नहीं।
बात अन्तःकरण की सुनो औ गुनो,
सत्य का रूप निश्चय मिलेगा तुम्हें।
लोभ के आवरण को हटाते रहो,
तो अँधेरा नहीं फिर छलेगा तुम्हें।
बेचते हैं जो निज देश सम्मान को,
उन कृतघ्नों से नाता निभाना नहीं।
लूटने को खड़े हैं लुटेरे बहुत,
स्वर्ण रवि का अनोखा उजाला यहाँ।
कृष्ण का धाम, श्रीराम की पुण्यभू,
सिद्ध काशी का सुन्दर शिवाला यहाँ।
टेक देना, समर में न घुटने कहीं ,
सत्य को अब पराजित कराना नहीं।

❖❖❖

यथार्थ का अर्थ

यथार्थ का अर्थ–
चुप रहो बोलो मत।
आँखें बन्द रखो,
देखो मत।
कान बन्द रखो,
सुनो मत।
वरना भूचाल आ जाएगा,
सब कुछ मिट जाएगा।

संघर्ष का अर्थ

– गीता आकांक्षा

संघर्ष का अर्थ
स्वयं आगे बढ़ो,
दूसरों को पीछे रहने दो।
लोगों की उन्नति पर
जलो–भुनो।
जितना बन पड़े उन्हें कोसो,
वरना भूचाल आ जाएगा,
सब कुछ मिट जाएगा।

सामाजिकता का अर्थ

सामाजिकता का अर्थ–
मिलने पर हाथ जोड़ो,
हाथ मिलाओ,
हलो, हाय करो,
चापलूसी–भरी बातें करो,
और होठों पर झूठी मुस्कान।
वरना, भूचाल आ गया जाएगा,
सब कुछ मिट जाएगा।

सच्चाई का अर्थ

सच्चाई का अर्थ–
झूठ बोलो,
पर सच का दावा करो।
कुछ न बन पड़े तो
किसी सच्चे और ईमानदार को,
झूठे आरोपों में फँसा दो।
वरना भूचाल आ जाएगा,
सब कुछ मिट जाएगा।

❖❖❖

मैं बारिश की ठंड रुपहली

मैं बारिश की ठंड रुपहली–
बनकर, तुम्हें जगाऊँगी।
जो आज सुनहरे पंखों वाला
स्वप्न यान तुम ना लाए।

मैं देखूँगी मन का आँगन–
और प्यार के फूल खिलाऊँगी।
मैं ओढ़ूँगी धानी चूनर–
और गीत मिलन के गाऊँगी,
मैं हूँ रवि की प्रथम किरण सी
हिमगिरि तुम्हें बनाऊँगी।

मैं यादों के मोती चुनकर
गीतों के हार बनाऊँगी,
तुम सुन लेना, मनुहार विकल,
मैं जब–जब तुम्हें बुलाऊँगी,
मैं चन्दा का छोटा तारा,
सूरज तुम्हें बनाऊँगी।

मैं थिरकन प्रीत के पाँव की
और नूपुर तुम्हें बनाऊँगी,
मैं जग की भूल भुलैया में–
खोकर तुमको पा जाऊँगी,
मैं मन की पीड़ा बोझिल सी,
आँसू तुम्हें बनाऊँगी।

जागो सारी रैन

– रचना शुक्ल

कभी तुम जागो सारी रैन,
चाँद तारे सो जाएँ,
गगन ज्यों धरा, धरा आकाश,
काश एक पल खो जाएँ।

तुम्हारा दो पल का ही साथ,
रहे हाथों में गर ना हाथ।
धड़कनों की सीपी में बन्द,
याद के मोती की सौगात।
बोल सकते हों केवल नैन,
नैन कुछ कह ना पाएँ।।

राज है आँखों में बस राज,
सुने किसने कब दिल के साज।
कहीं सब बातें होकर मौन,
उठाए कितने तेरे नाज।
उड़े धानी चूनर के रंग,
और सपने मुरझाएँ।।

ना जाने क्यों थी कोई आस ,
जागी क्यों यह चातक सी प्यास।
न जाने कितने अन्तर्द्वन्द्व ,
मुझे क्यों प्रीत न आयी रास।
सुने क्यों बेकल मन के बैन,
और क्यों हमें भरमाएँ।।

मुझे तुम रहने दो इस पार,
फेर लो अपने मन के द्वार।
मुझे पीड़ा में भी आनन्द,
अकेलापन मेरा अभिसार।
बीत ही जायेंगे दिन–रैन–
चैन, आए ना आए।।

❖❖❖

मन को क्या कह आऊँ

- निर्मल साधना

तुम कहते हो तो पायल पर भी प्रतिबंध लगा लेती हूँ,
बार–बार देहरी तक जाए उस मन को मैं क्या कह आऊँ।

तन–भीगे का दुःख नहीं है,
भीगी सारी उमर हमारी
प्यार न लेता जनम कहीं तो–
रह जाती, हर पीड़ा क्वाँरी।

देहरी आकर लौट गई जो बिनब्याही डोली भाँवर की।
अनभोगे सुहाग के बोलो आकुल क्षण को क्या कह आऊँ।।

उमर चुक रही, अर्थ थके हैं,
साँसों को पैबंद जुटाते।
सौ–सौ जनम–मरण हारे हैं,
केवल इस विभ्रम के नाते।

जाने कैसे टूट गया यह संदर्भों का दर्पण मेरा।
चूर–चूर प्रतिमान हुए तो, उस टूटन को क्या कह आऊँ।।

आँगन के बचपन को कैसे,
इन अवसादों से कहलाऊँ।
थकन साँस की पूछ रही है,
कौन अनछुई मुहर लगाऊँ।

आँचल में कामायनि मेरे तुमने सौ–सौ बार लिखा है।
बाँध न पाए विषधर जिनको उस चन्दन को क्या कहलाऊँ।।

❖❖❖

लवकुश

- प्रतिमा भारती

कुंतल कपोल पर आते, उन्हें सिर हिला–
देते हटा हाथ से लगाम नहीं छोड़ी है।
आश्रम के सिद्ध मुनि हारे समझा के उन्हें,
करें क्या वे बालकों की जिद ही निगोड़ी है।
अवध की सेना सामने है ललकार रही,
किन्तु लवकुश ने न सिंह दृष्टि मोड़ी है।
उस ओर बड़े – बड़े वीरों की जुड़ी है भीर,
इस ओर तो किशोर बालकों की जोड़ी है।

बाल हठ टूटे नहीं, छूटे नहीं कुल कानि,
झड़ी सी लगाये नैन सीता दुखियारी के।
लाख समझाया नहीं माने तो न माने वह,
अड़े रहे पग आन–बान के पुजारी के।
प्यार की जगह युद्ध कैसा विपरीत योग,
दोनों ही प्रसून राम ही की फुलवारी के।
कंचन सी कांति मुख मंडल था दीप्तिमान,
पुलकित हो रहे थे अंग धनुधारी के।

लोचनों से छलक रहा था रघुवंश शौर्य,
पुलक रहे थे कर धनुष चढ़ाने को।
ललक रहा था उर वीरों के समक्ष आज ,
सहित उमंग रण – कौशल दिखाने को।
माँ की, गुरुवर की न मानी बात आन पर,
रोकना कठिन ही था समर दीवाने को।
सीता देखती थी दृग तारकों को मुग्ध होके,
लवकुश ताकते थे अपने निशाने को।

❖❖❖

वह छवि

- मंजुलता तिवारी 'सुशोभिता'

यादों में, तन्हाई में, आशा की अमराई में।
छवि है एक बसी मन में अन्तस् की गहराई में।।

ये छवि ही तो जीवन है,
मेरे दिल की धड़कन है।
और किसी नन्दन वन से,
सुन्दर –सा यह उपवन है।

फूल तुम्हीं इस बगिया के भौंरा–तितली सब तुम हों।
स्वर तेरे मिलते मुझको साँसों की शहनाई में।।

तुम क्यों दूर हो गये मुझ से,
मुझे अकेला छोड़ गए।
थी सीधी सी राह अचानक
क्यों भटकन में मोड़ गए।

कौन भला दिग्दर्शक हो, तुमसे भी आकर्षक हो।
गंध बिखेरे हर पल जो जीवन की अँगनाई में।।

मन तेरा है, तुम मेरे हो,
भेद नहीं है दोनों में।
एकाकार हुए जब मन से,
क्यों छुप लें हम कोनों में।

आज प्रतीक्षा आगम की, आशा मधुर समागम की।
ये जो अपना जीवन है, क्यों डूबा रुसवाई में।।

❖❖❖

पंछी आँगन के हम

- डा.विद्याविन्दु सिंह

चौखटों ने हमें कितना जकड़ा कसा,
पंछी आँगन के हम चहचहाते रहे।
पाँवों में पायलों की पड़ीं बेड़ियाँ,
हम तो हँस हँस के रुनझुन बजाते रहे।
किसने अँगुली पकड़कर सिखाया हमें,
अपनी अँगुली जला सीख पाते रहे।
उजली राहें न हमको कहीं भी दिखीं,
हम अँधेरों में राहें बनाते रहे।
कोई मीठे बैन हम से बोला नहीं,
अपनी वाणी में हम रस घुलाते रहे।
चार सखियाँ जुटीं, सुख–दुख बँट गया,
आहें भर, कहकहे हम लगाते रहे।
भूख हमसे किसी की न देखी गयी,
रोज सबको खिला, तृप्ति पाते रहे।
जन्म देकर जिसे हमने धरती दिया,
वे सता कर हमें क्षमा पाते रहे।
जिस्म ने, मन ने झेली युगों से व्यथा,
हम व्यथा की कथा भी रचाते रहे।
पीर आँखों उतर, आँचल चू गयी,
मन की खाँई में उसको छिपाते रहे।
हमने सबको बँधाई है हिम्मत सदा,
खुद रोते हुए, मुस्कराते रहे।
हैं हमारी व्यथा से भरीं पोथियाँ,
पीर को गीत कह, गुनगुनाते रहे
अपनी ममता के आँचल से सबको छुआ,
दर्द को भी हम लोरी सुनाते रहे।
चौखटों ने हमें कितना जकड़ा, कसा–
पंछी, आँगन के हम चहचहाते रहे।।

❖❖❖

परिवर्तन

- श्रीमती शालिनी खान

उठो, माँगता युग परिवर्तन,
इस युग की हर नीति बदल दो,
रीति बदल दो, नीति बदल दो,
हर स्वर हर लय ताल बदल दो,
दुख से ओत–प्रोत वीणा के आगे बढ़कर, गीत बदल दो।
बदल सको तो आगे बढ़कर, उस वीणा के तार बदल दो।।

यहाँ तो पग–पग पर मानवता सिसक–सिसक कर रोती है,
निर्मम भ्रष्ट हृदय के सम्मुख अपने अश्रु पिरोती है।
हर बाला की साड़ी पर पैबन्द लगाये जाते हैं,
गीत जहाँ इज्जत के ऊँचे स्वर में गाये जाते हैं।
खिलने से पहले हर कलिका कुचल मसल दी जाती हो,
सब आँखें रो–रो कर अपने गीत व्यथा के गाती हों।
बदल सको तो आगे बढ़कर उस रोदन का ध्येय बदल दो।।

जहाँ का हर नाता झूठा हो, हर रिश्ता व्यापार जहाँ,
स्वार्थ जहाँ आराध्य बन, सौदेबाजी उद्देश्य जहाँ।
धर्म कलंक जहाँ बन जाये, नीति बने दुर्नीति जहाँ,
सच्चाई से नफरत करते दुष्टों से हो प्रीति जहाँ।
बदल सको को आगे मानव का आराध्य बदल दो।।

सच्चाई पर्दा करती हो, बेइमानी स्पष्ट जहाँ,
पग–पग पर छीना जाता हो मानव का अधिकार जहाँ।
जनता हित सत्ता बनती पर दुःख मिलता चहुँ ओर जहाँ,
धन पाकर हों भ्रष्ट विचारक, निर्धन को स्थान कहाँ?
जो न तुम्हें सुख से जीने दे–तुम ऐसी सरकार बदल दो।
बदल सको तो आगे बढ़कर शासन की हर नीति बदल दो।।

❖❖❖

गजल

- डॉ.सरिता शर्मा

एक

तुझे क्या बताऊँ ऐ हमनशीं, तुझे चाह कर मैं सँवर गई।
तेरे इश्क में वो जूनून है कि मैं सब हदों से गुजर गई।।

तेरी रहमतों की वो बारिशें जो हुई हैं मेरे वजूद पर,
मेरे जिस्म से मेरी रूह तक कोई चाँदनी सी उतर गई।

तेरे हर कदम पे निसार हैं, मेरी चाहतें मेरी उल्फतें,
मेरी राह तुझसे जुदा नहीं, तू जिधर गया मैं उधर गई।

मेरे गेसुओं में बसी हुई,तेरी उंगलियों की वो खुश्बुएँ,
जो लगी महकने तो खुदबखुद, मेरी जुल्फ खुल के सँवर गई।

दो

सर्द–गर्म मौसम में ओढ़कर सम्भाला है।
आपकी छुअन जैसे देह का दुशाला है।।

उम्र भर चले हैं हम पत्थरों में काँटों में,
पीर–पीर पैरों में, पोर–पोर छाला है।

लाख हों अंधेरे पर, पग न डगमगाएँगे,
मेरी बन्द पलकों में प्यार का उजाला है।

सर को ढक के आँचल से, लेके थाल पूजा का,
घर तेरे मैं आई हूँ,ये मेरा शिवाला है।

क्या भला बुझायेगी ये हवा जमाने की,
मैं हूँ वो दिया, जिसको आँधियों ने पाला है।

❖❖❖

प्रेम

- डा. अमिता दुबे

तुम्हारी आंखों में मैं
देखी है–
एक खास चमक,
एक विशेष
रिश्ते के प्रेम की,
गहराई की
बुनियाद की।

मानों हमारे बीच
प्रेम का तन्तु
और गहरा हुआ हो।
जैसे
पुराना होने पर सोना
और खरा हुआ हो।
न जाने क्यों
ऐसा मेरा विश्वास है
हम सदा
ऐसे ही रहेंगे
हँसते–खिलखिलाते
गुदगुदाते–चहचहाते
क्योंकि
हम सभी रिश्ते–नातों से
ऊपर
मित्र हैं।

पति–पत्नी से अच्छा
मित्र इस दुनिया में
और कोई नहीं
क्योंकि
मित्रता में
कोई गोपन नहीं होता,
मात्र निश्छल प्रेम होता है,
गहरा विश्वास होता है।

यही गहरा प्रेम
और विश्वास
जो हमारे बीच
जनमा–पनपा है
वह वर्ष–प्रतिवर्ष
बढ़ रहा है
प्रौढ़ हो रहा है।

❖❖❖

गर्व से गरजता

– जगदीश शुक्ल

खोजते, नहीं जो हल, अब्दुल कलाम जी तो,
विश्व में तो भारत का डंका नहीं बजता।
देश, अणु–शक्ति वाले करते ही मनमानी,
छोटे देशों का विकास, उन्हें नहीं छजता।
पोखरण का धमाका, स्वाभिमान की पताका,
घोष, हिन्द का न आज, गर्व से गरजता।
शक्ति परमाणु की जो होती नहीं पास फिर,
शान्ति के पुजारियों को भला कौन भजता।।

कमाल दिखलाया है

राष्ट्र का बढ़ाया मान, अब्दुल कलाम जी ने,
ज्ञान व विज्ञान का कमाल दिखलाया है।
खोजा ऐसा हल, बलवान हुआ भारत है,
स्वाभिमानी देश है, ये बात बतलाया है।
दादागिरी करके जो आँखें, थे, दिखाते हमें,
उनके दिलों को भी बखूबी, दहलाया है।
सूझा नहीं जब इस विश्व को जवाब कोई,
तीर–परमाणु प्रतिबन्ध का चलाया है।।

❖❖❖

शत्-शत् प्रणाम भारत माता

- डॉ. मोहन तिवारी ''आनन्द''

शत–शत प्रणाम भारत माता, शत–शत प्रणाम..
सौ करोड़ बेटों की मैया, सुख–समृद्धि दाता।

तेरा मुकुट हिमालय सोहे, सागर चरण पखारे,
अमृत मय गंगा का पानी, भवसागर से तारे।
सरस्वती, कृष्णा, कावेरी पुण्य सलिलि दाता,
शत–शत प्रणाम भारत माता, शत–शत प्रणाम..

तेरी पावन भूमि अलौकिक, दुनियां में सबसे न्यारी,
महिका रहीं हृदय का आगन, काश्मीर केशर क्यारी।
फूलत फलत सुशोभित सुन्दर, उपवन सुखदाता,
शत–शत प्रणाम भारत माता, शत–शत प्रणाम..

तेरे राम–कृष्ण बेटों ने, धर्म की ज्योति जलाई,
गौतम–गुरूनानक नर तन धर, प्रेम ध्वजा फहराई।
सत्य अहिंसा और शान्ति की तुमहिं जन्म दाता,
शत–शत प्रणाम, भारत माता, शत–शत प्रणाम..

तुलसी, सूर, कबीरा, रहिमन, केशव, कालीदास,
धर्म कर्म ईमान राह पर, जगमग किया प्रकाश।
दीन–दुखी बेबस अनाथ की, तुम आश्रय दाता,
शत–शत प्रणाम भारत माता, शत–शत प्रणाम..

वीर भगत सिंह, मंगल पाण्डे, चंद्रशेखर आजाद,
तोड़, गुलामी की जंजीरें, दी बुलंद आवाज।
नेहरू–गांधी के सपनों को तुम जीवन दाता,
शत–शत प्रणाम भारत माता, शत–शत प्रणाम..

❖❖❖

लहजा

- हीरालाल

क्या लहजा, क्या अन्दाज, हैं सभी लाजवाब,
बेवजह नहीं कोई फिदा उसकी अदाओं पर।

मेहरबान हैं, दिलचस्प हैं, दिलदोज भी हैं,
कैसे न हो दिल कुर्बान, ऐसी निगाहों पर।

दी पनाह पलकों के साये में मुरीदों को,
कोई कब तक न करे नाज ऐसी आँखों पर।

बाद महशर भी रहेगा उसका हुस्नोजमाल,
सबको है पूरा एतबार दिल की दुआओं पर।

ख्वाहिश है आशिकों की, वह गम से रहें दूर,
खुदा भी होता मेहरबान, खैरख्वाहों पर।

ऐसी बात नहीं

एक–दूसरे, से हम न अजनबी, न अनजाने हैं,
हुई न हो उनसे मुलाकात, ऐसी बात नहीं।

मुलाकात ही नहीं, जी भर हुई थीं बातें भी,
अब दीगर है ये बात, कि उनको कुछ याद नहीं।

मिलते रहने का भी किया था, वायदा उसने,
रहा न यह भी याद, फिर कोई बात नहीं।

बेहद हुये थे कायल, उनकी दिलरुबाई के ,
आया न, दिलदादगी पर यकीं, कोई बात नहीं।

मान ले मेरी नहीं, गमजदा दिल की बात,
कहने सुनने को रह जाये, कोई बात नहीं।

❖❖❖

अपसै केरि ढिठाई है

– भारतेन्दु मिश्र

ऊपर बड़ी मिठाई है
भीतर भरी खटाई है।

जोरी गाँठि कै चलतै हन
करजा पाई–पाई है।

छके त्वाँद वै फ्यारैं हाथ
वाँठन पर जमुहाई है।

उनके जूता चाँदी क्यार
हमरे पाँव बेवाँई है।

पानिहु बिकै लाग ददुआ
जबरदस्त महँगाई है।

घरहेम गरदन काटि रहे
अपसै केरि ढिठाई है।

की ते सलाह लीन्हे हौ

केतने दिन बादि राह लीन्हे हौ
खैरियत है कि चाह लीन्हे हौ।

आगि बुझिगै धुँआ–धुँआ हुइगा
आजु लौ दर्द–दाह लीन्हे हौ।

अब खुले दिल ते चलौ बात करी
तुम तौ सेतिहै–म डाह लीन्हे हौ।

हमरे जिउ मा पियारु है वइसै
नीक कीन्हे हौ, थाह लीन्हे हौ।

टूट रिस्ता जुड़ा मुहब्बति का
यार, की ते सलाह लीन्हे हौ।

❖❖❖

गजल

- प्रीतम सिंह राही

मैं सपने जो पिछले पहर देखता हूँ।
इक अध–बना पक्का घर देखता हूँ।

है पारे की फितरत सदा संग मेरे,
मैं पैरों में बँधा सफर देखता हूँ।

न पतवार, न कश्ती, न कोई चप्पू,
मैं जोश में आये भँवर देखता हूँ।

है बूँद का भी कोई अस्तित्त्व बेशक,
थलों में जलती का हशर देखता हूँ।

है चिंतन का शायद कोई पेच ढीला,
विचारों में आई कसर देखता हूँ।

धुँआ खा गया है सब्ज पेड़ सारे,
मुरझाये फूल–पत्ते समर देखता हूँ।

न छत, न दीवारें, न कोई दरीचा,
वर्षों से बंद इक घर देखता हूँ।

गजल

जिनके कंधों पर सर नहीं होते।
वो आदमी मातबर नहीं होते।

पिंजरों में बंद परिन्दों के,
पर होते हुए भी पर नहीं होते।

क्यों हवा में दे रहे हो दस्तक,
उजड़े घरों के दर नहीं होते।

उनके माथे पर लिखा सफर होता है,
यायावरों के घर नहीं होते।

उम्र आश्की की तवील नहीं होती,
किस्से आश्की के मुख्तसर नहीं होते।

किसी लालसा की कोई हद नहीं होती,
कुएँ इच्छाओं के भर नहीं होते।

सरों की बाजी के बिना 'राही'
मसले जीस्त के सर नहीं होते।

❖❖❖

सृजन स्मरण

गोरख पाण्डेय

जन्म- 1945 निधन- 29 जनवरी 1989

हमारी ख्वाहिशों का नाम इन्कलाब है।
हमारी ख्वाहिशों का सर्वनाम इन्कलाब है।
हमारी कोशिशों का एक नाम इन्कलाब है।
हमारा आज एकमात्र काम इन्कलाब है।

लक्ष्मीकान्त वर्मा

जन्म- 1922 निधन- 17 अक्टूबर 2002

बरसों के बाद उसी सूने से आँगन में–
जाकर चुपचाप खड़े होना।
रिसती सी यादों से पिरा–पिरा उठना
मन का कोना–कोना।

कोने से फिर उन्हीं सिसकियों का उठना,
फिर आकर बाहों में खो जाना।
अकस्मात मण्डप के गीतों की लहरी,
फिर गहरा सन्नाटा हो जाना।
दो गाढ़ी मेंहदी वाले हाथों का जुड़ना,
कंपना, बेबस हो गिर जाना।